बसरा की राबिया

जुही

नहीं वह एकल नहीं थी
वह सौ मर्दों के बराबर थी
सर से पांव तक
सच्चाई में लिपटी
खुदा की नेमत से सराबोर
और सभी ज़्यादतियों से आज़ाद।

बारहवीं शताब्दी के सूफी कवि फ़रीदउद्दीन अत्तार ने राबिया-अल-अदाविया के बारे में ये पंक्तियां लिखी थीं। राबिया इस्लाम के चुनिंदा संतों में से एक थीं। उनका दर्ज़ा मीराबाई, कबीर, नानक जैसे संतों के साथ है। वह इस्लाम के इतिहास का एक ऐसा सफ़ा है जिसका आज तक सच्चाई, आज़ादी और दृढ़ निश्चय में कोई सानी नहीं है। मुहम्मद साहब की मृत्यु के पचासी साल बाद जन्म लेने वाली राबिया को इस्लामी इतिहास में "मर्दों के ताज" के नाम से जाना जाता है।

राबिया का जन्म

राबिया का जन्म बगदाद के दक्षिणी हिस्से के एक छोटे से गांव बसरा में हुआ था। वह अपने मां-बाप की चौथी संतान थीं। कहा जाता है कि उनके जन्म पर उनके ग़रीब मां-बाप बिल्कुल खुश नहीं हुए थे। एक तो चार बेटियों का बोझ, ऊपर से घर में आमदनी का कोई ज़रिया नहीं। उनके जन्म के वक्त घर में तेल की एक बूंद भी नहीं थी।

राबिया की मां ने अपने पति से पड़ोसी के यहां से तेल मांगने को कहा जिससे घर में रोशनी की जा सके। पति ने फ़ैसला किया था कि वह किसी से कुछ मांगेगा नहीं। उसने आकर पत्नी से कहा कि पड़ोसी ने दरवाज़ा नहीं खोला। पत्नी रोने लगी और शर्म और मायूसी में डूबा पति घुटनों में मुंह छिपाकर सो गया। तब मुहम्मद साहब उसके ख़ाब में आए। "ग़म न कर बंदे। तेरे घर में रानी का जन्म हुआ है। जाकर बसरा के गवर्नर से कह– हर रात तुम खुदा को सौ दफ़ा याद करते हो, पर पिछली रात तुम भूल गए। उसके बदले में चार सौ दिनार मुझे दो। ऐसा खुदा का हुक्म है।" राबिया के पिता ने ऐसा ही किया। गवर्नर यह सुनकर बहुत शर्मिन्दा हुआ। उसने ग़रीबों में दो हज़ार दिनार बंटवाए और राबिया

के पिता को चार सौ दिनार दिए। साथ ही राबिया के घर आकर उसकी चौखट पर सज़दा किया। समय गुज़रता गया।

थोड़े समय बाद राबिया के मां-बाप की मृत्यु हो गई। बसरा में अकाल पड़ा। राबिया और उसकी बहनें बिछुड़ गईं। राबिया को एक बदमाश उठाकर ले गया। उसने छः दिनार के बदले एक शेख़ के हाथों उसे बेच दिया। शेख़ राबिया को खूब मारता। सख़्त काम कराता, पर राबिया सदैव ख़ुदा का नाम लेती रही। रातभर इबादत करती। कहती— हे खुदा, यह शेख बुरा नहीं है। जो यह कर रहा है वह तेरी मर्ज़ी से है और मेरे लिए यह तेरी मोहब्बत का तोहफ़ा है।" शेख यह सुनकर बहुत पछताया और डर भी गया। उसने राबिया से माफ़ी मांगी और उसे आज़ाद कर दिया।

खुद्दार राबिया

राबिया रेगिस्तान में चलती रही, दिनों-दिन तक। उसका गधा मर गया। साथियों ने कहा, तुम्हारा सामान हम उठा लेते हैं, पर खुद्दार राबिया ने कहा, "मैं अपने भरोसे इस रेगिस्तान में आई हूं, मेरा ख़ुदा साथ है। मैं अपना बोझा खुद उठाऊंगी।" सब उसे तन्हा छोड़कर चले गए। तब राबिया ने हाथ उठाकर ख़ुदा से कहा, "तुम्हारी मर्ज़ी से मैं तुम्हारे घर आ रही हूं? क्या कोई मेहमान के साथ ऐसे पेश आता है। तुमने मेरा गधा भी छीन लिया।" वह इबादत कर ही रही थी कि उसका गधा जी उठा। राबिया की दुआ में इतना असर था।

राबिया हर वक्त ख़ुदा की इबादत में लीन रहती। बांसुरी बजाती और जो मिल जाता उसमें गुजारा करती। सूत कातकर बेचती, पर कभी भीख नहीं लेती। कहती, जब मैंने ख़ुदा से कुछ नहीं मांगा, तो बंदों का क्यों लूं। ख़ुदा सब जानता-देखता है। जब देना होगा देगा। उसे याद क्यों दिलाऊं।"

कहा जाता है कि राबिया बड़ी कड़वी जबान की थी। कभी किसी की चापलूसी नहीं करती थी। न किसी से डरती थी। जो मन में होता उसे बेबाक कह देती। इसलिए उस समय के पीर-संत उससे खफ़ा रहते थे। एक तो औरत, उस पर खुद्दार और तेज़ तर्रार। राबिया कुंवारी भी थी। किसी मर्द के अधीन नहीं रहना चाहती थी। कहती "शादी उनकी होती है जिनका ज़िस्म होता है। मेरा ज़िस्म ख़ुदा का है। मैं उनकी अमानत हूं। फिर कैसी शादी"। उन्होंने लिखा—

दोस्त बनाया, सब कुछ बांटा
ज़िस्म मेरा लोगों ने अपनाना चाहा
पर सब मेरे पास बैठ ही पाए
मेरा दिल उसी ने पाया
जिसको मैंने दोस्त बनाया।"

ख़ुदा तो दोस्त है

राबिया मानती थी कि ख़ुदा हम सब में है। उसकी पूजा हम नर्क में जलने के डर से, या फिर स्वर्ग जाने की लालसा में न करें, क्योंकि केवल एक खराब दास ही सज़ा या ईनाम के डर से काम करता है। फिर ख़ुदा तो दोस्त है, पड़ोसी है —उससे डर कैसा। मैं तो सिर्फ़ उससे सुख-दुख बांटती हूं।"

जीना आसान न था

इन सब बातों से शायद हमें लगेगा कि राबिया बहुत ही आसान जीवन जी रही थी, पर यह सच नहीं है। मर्दों के बीच एक अकेली औरत होकर जीना उस समाज में भी उतना ही मुश्किल था

जितना आज। समाज का मानना था कि निकाह न करके उसने अपना धार्मिक कर्त्तव्य पूरा नहीं किया। इसलिए राबिया पर भी छींटे-कसे गए, लांछन लगाए गए, पर राबिया टस से मस नहीं हुई। एक बार चार मर्दों ने उसे बदनाम करने की कोशिश की। रात को भेष बदलकर उसके घर पहुंच गए। कहने लगे, यह औरत मर्दों को रिझाने के लिए अकेली रहती है। आज देखते हैं कैसे बचती है, पर राबिया पर इसका कोई असर नहीं हुआ। उसने उनकी आवभगत की, सेवा की और

सब कुछ जानते हुए भी ऐसा ज़ाहिर नहीं होने दिया कि वह उन्हें पहचानती है। चारों हार गए। उससे माफ़ी मांगी और उसके अनुयायी हो गए।

इसी तरह कुछ लोगों ने उससे कहा, तुम खुद को संत कहती हो—तुम न तो मर्द हो, न शूरवीर, न हिम्मती, फिर संत कैसे हुई। राबिया ने जवाब दिया, मैं खुद को संत नहीं कहती। मैं न चालाक हूं, न इर्ष्यालु, न घमंडी, फिर संत कैसे हुई।"

राबिया जितने भी दिन जीवित रहीं, अपना खुदा से ही एक रिश्ता बनाया और निभाया। खुदा के लिए उनका प्यार अटूट था। वह मानती थी कि उनका सब कुछ खुदा का है। कहा जाता है कि शाम की नमाज़ के बाद वह छत पर जाती और घंटों खुदा से बात करती। राबिया की ही एक पंक्ति में लिखा है "हे खुदा, तारे चमक रहे हैं, सारा जग सो रहा है। सारे प्रेमी अपने प्रियतम के साथ हैं और मैं तुम्हारे साथ अकेली।"

उनकी सबसे ख़ूबसूरत तहरीर जिससे ईश्वर के प्रति उनके प्रेम का पता चलता है, वह है— "हे खुदा, अगर मैं तेरी इबादत नर्क में जलने के डर से करुं तो मुझे नर्क में जला और अगर स्वर्ग पाने की इच्छा से करुं तो स्वर्ग से महरुम कर, पर अगर तेरी इबादत, तेरे लिए ही करुं तो मुझे अपना ले।"

राबिया-तब और अब

राबिया-अल-अदाविया की मौत के बारे में कुछ निश्चित नहीं है। कहा जाता है कि वह अपना खेत जोतते-जोतते एक दिन गिर पड़ी कुछ कहते हैं उन्होंने समाधी ले ली, पर सबसे ज़्यादा प्रचलित मत है कि वह खुदा से नाराज़ हो गई। वह मक्का हज पर गई। वहां उन्हें माहवारी हो गई और काबा की मस्ज़िद में जाने की इजाज़त नहीं मिली। कहा गया कि वह अपवित्र हैं। बस वह खूब बरसीं, खुदा को बुरा भला कहा और बसरा आ गई। फिर उन्हें न किसी ने देखा न उनके बारे में सुना।

जो भी हो, राबिया आज हम सबके लिए एक मिसाल है। मुसलमान समाज की खुद्दार, एकल और खुदा की दोस्त इस संत की जीवनी से हम प्रेरणा ले सकते हैं। समाज में औरत के लिए

(क्रमशः पृष्ठ 28 पर)

बसरा की राबिया

(पृष्ठ 15 का शेष)

मुश्किलें आज भी हैं, तब भी थीं, पर वह लड़ सकती थी, अपनी मर्ज़ी के मुताबिक जी सकती थी। तो फिर हम क्यों नहीं ऐसा कर सकते। हम सबके अंदर एक राबिया है। ज़रुरत है उसे खोजने, पहचानने और समझने की। यह लेख राबिया बसरा की जीवन गाथा नहीं है। सिर्फ़ उनकी ज़िंदगी पर पड़े हुए पर्दे को उठाने का प्रयास है। □

(मूल लेख-"राबिया ऑफ बसरा"–
ज़ोहरा शिरीन शहाबुद्धीन–पर आधारित)

अप्रैल-मई, 1998